‘पोंगल’ के बहाने
असमानता और भेदभाव की चर्चा

माया मौर्य

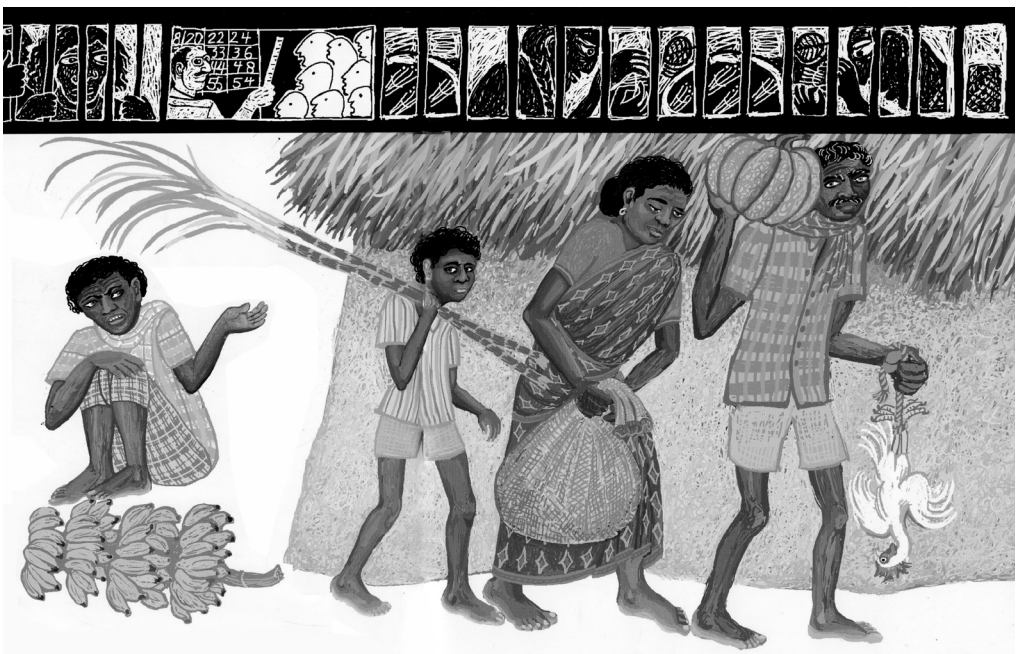

बच्चों के निजी अनुभवों को लेकर कक्षा में सामाजिक मुद्दों पर बातचीत हमेशा एक तरह का तनाव पैदा करती है। कई बार बच्चे अपने अनुभवों को बयान करने में मुखर भी नहीं होते। यह भी है कि हर बच्चा अलग-अलग जीवन अनुभवों से गुज़रा होता है और विभिन्न सामाजिक मुद्दों को लेकर उसकी अपनी धारणाएँ और परिवारों से मिली मान्यताएँ अलग-अलग हो सकती हैं। ऐसे में बच्चों के अनुभवों पर बात करने का एक ज़रिया कोई घटना या किताब हो सकती है। इसके चलते कक्षा के तनाव को थोड़ा कम करने में मदद मिलती है और मुद्दों पर रचनात्मक बातचीत हो पाती है।

मध्य प्रदेश के भोपाल शहर की कच्ची बस्तियों में जनजातीय और दलित समुदाय के बीच शिक्षा का काम करने वाली ‘मुस्कान’ संस्था ने अभी कुछ वर्षों से प्रकाशन का काम भी शुरू किया है। जनजातीय समुदाय में प्रचलित क़िस्से, बच्चों के वास्तविक अनुभव और जेण्डर व बाल अधिकार को उन्होंने अपनी प्रकाशन सामग्री बनाया है। वर्ष 2020 में प्रकाशित ऐसी ही एक किताब है, *पोंगल*, जिसकी लेखिका हैं बामा। वे एक तमिल दलित नारीवादी लेखिका, शिक्षिका और सामाजिक कार्यकर्ता हैं। किताब में कला और सज्जा केरन हेडाक द्वारा की गई है। मूल तेलुगु कहानी का अँग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद अमिता शीरीन ने किया है और सम्पादन सी एन सुब्रमण्यम का है।

कहानी लम्बे समय से चली आ रही पोंगल की परम्परा पर सवाल उठाती है। पोंगल के त्योहार पर कामगार अपने मालिकों को काफ़ी सारी चीज़ें तोहफे स्वरूप देते हैं। इसके बदले मालिक उन्हें, पोंगल यानी मीठी खिचड़ी खाने को देते हैं। इस कहानी का मूल पात्र एसक्किमुत्थु इस परम्परा पर सवाल उठाता है। वह अपने पिता से कहता है कि हम केले का पूरा घौद, बड़ा कद्दू, एक मुर्ग़ी, ढेर-सा चावल, इतना कुछ मालिक को देते हैं, बदले में वे हमें 10 रुपए के चावल का पोंगल देते हैं। हम कभी अच्छा खाना नहीं खा पाते। यदि हम मालिक को यह सब न दें तो कम-से-कम 5-6 दिन ठीक से खाना तो खा पाएँगे।

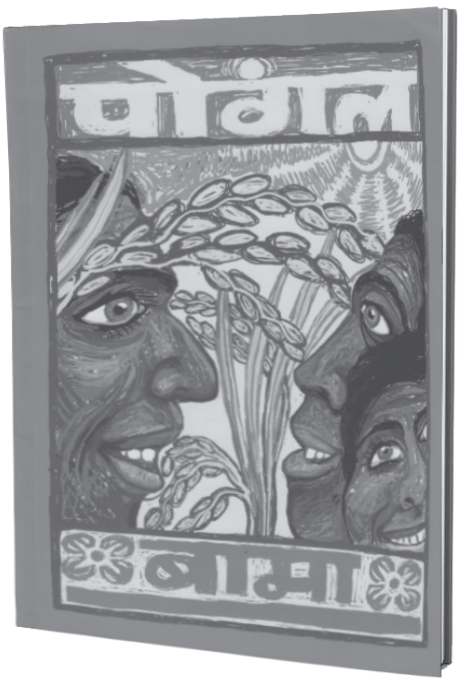

किताब के इस कथानक को देखते हुए लगा कि बच्चों के साथ इसे पढ़ा जाना चाहिए। भेदभाव के विषय पर चर्चा के लिए यह उपयुक्त किताब होगी। इसलिए मैंने बच्चों के साथ इसपर बातचीत की।

किताब पर शुरुआती 8 से 14 साल के बच्चों के साथ चर्चा

बातचीत की शुरुआत चित्रों से हुई। मैंने बच्चों को किताब का आवरण चित्र दिखाते हुए पूछा कि आपको इसमें क्या-क्या दिख रहा है? यह चित्र देखकर आपके मन में क्या-क्या बातें आती हैं?

बच्चों के जवाब इस प्रकार थे :

महक ने कहा, "पोंगल किसी जगह का नाम लग रहा है।"

एक अन्य बच्चे ने कहा कि किसी जाति का नाम लग रहा है।

कुछ और जवाब थे। बिट्टू ने कहा, "गेहूँ का नाम होगा। इस तरह का नाम तमिलनाडु की फ़िल्म में सुना है।"

सोनिया बोली, "चित्र में थोड़े ग़रीब लोग लग रहे हैं, आदिवासी जैसे।"

मैंने पूछा, "चित्रों को छूकर देखने में अच्छा लग रहा है? चित्र थोड़े अलग लग रहे हैं, मोटे-मोटे? क्या सच में यह लोग ऐसे दिखते हैं?"

महक ने कहा, "पहले चित्र अजीब लगे, पर जब कहानी पूरी पढ़ी और सुनी तो चित्र और लिखी बात जमने लगे। अब ये अच्छे लग रहे हैं। तमिलनाडु के गाँव ऐसे ही दिखते होंगे।"

कहानी सुनने के बाद चर्चा

कहानी सुनने के बाद बच्चों ने अपनी बातें कहीं।

"इस कहानी में जैसे पापा ने अलग-अलग काम बदले थे, वैसे हमारे पापा ने भी कई काम बदले। पहले हमारे पापा चेम्बर साफ़ करने का काम करते थे, उसके बाद उन्होंने ख़ुद की पान और गुटके की दुकान लगाई। पापा से कई सारे लोग पान और बीड़ी उधारी में लेते थे और कई दिनों तक उधारी चुकाते नहीं थे तो पापा ने वह काम बन्द कर दिया है। अब पापा एमएसीटी में सफ़ाई का काम करते हैं।"

"मेरे दादा भी सफ़ाईगिरी का काम करते हैं। हम भंगी के समाज के हैं। इसीलिए इसी तरह के काम हमारी जात वालों को मिलते हैं।"

तरुण ने कहा, "हमेशा ग़रीबों को सब पैरों की जूती समझते हैं। माडसामी को उस सेठ ने दुत्कार दिया, इसी तरह कई बड़े लोग ग़रीबों को दुत्कार देते हैं, उनकी इज़्ज़त नहीं करते।"

बिट्टू बोला, "पढ़ाई से उसकी सोच बदली है। स्कूल में अलग-अलग जगह के बच्चे होते हैं। सब आपस में अपनी मुश्किलें शेयर करते हैं। अगर उन्हें अच्छा लगता है वह भी, और बुरा लगता है वह भी। पढ़ाई से सोच बदलती है।"

महक ने कहा, "जब पिता ने कहा कि पोंगल भैंस की नाँद में फेंक दो, मैं बाज़ार से मछलियाँ ख़रीदकर लाता हूँ तो वह मुझे अच्छा लगा। क्योंकि एसक्किमुत्थु के पापा, मम्मी और भाई की जो बेइज़्ज़ती मालिक के घर हुई थी, वह उस पोंगल की खिचड़ी को फेंकने से थोड़ी कम हुई।"

साधना बोली, "पापा ने पहले तो बात नहीं मानी फिर बाद में मान ली, यह मुझे अच्छा लगा। ऐसे ही मेरे पापा भी करते हैं। कहानी असली लग रही है। हमारे मोहल्ले में कुछ लोग भेदभाव तो करते हैं पर मन से दिखाते नहीं हैं। जब हम नल पर पानी भरने जाते थे तो वह बार-बार नल को धोते थे, फिर पानी भरते थे, और हमें कहते थे तुम लोग नल गन्दा कर देते हो। साथ ही हमारे बर्तनों से अपने बर्तन बहुत दूर रख लेते थे। अब हमने घर पर ही नल लगवा लिया है। मैंने एक दिन आंटी के डिब्बे से पानी पी लिया तो वो पूरा डिब्बा फेंक कर चली गईं। मुझे बहुत बुरा लगा। पानी पीना इतनी ख़राब बात है क्या?"

महक ने कहा, "मैंने जब *बकरी की साइकिल* किताब से एक लड़की की कहानी पढ़ी कि कुछ लड़कियाँ कन्या में खाने गई थीं तो उन्हें अलग बिठाया गया और दूर से पानी पिलाया गया, वह पढ़कर मुझे बहुत बुरा लगा।"

बच्चे कई बार छोटे-छोटे भेदभावों को सहते और मन में रखते जाते हैं। वे इस भेद भाव को समझ भी नहीं पाते और दुखी भी होते हैं, लेकिन वे किसी से कह नहीं पाते। यह कहानी

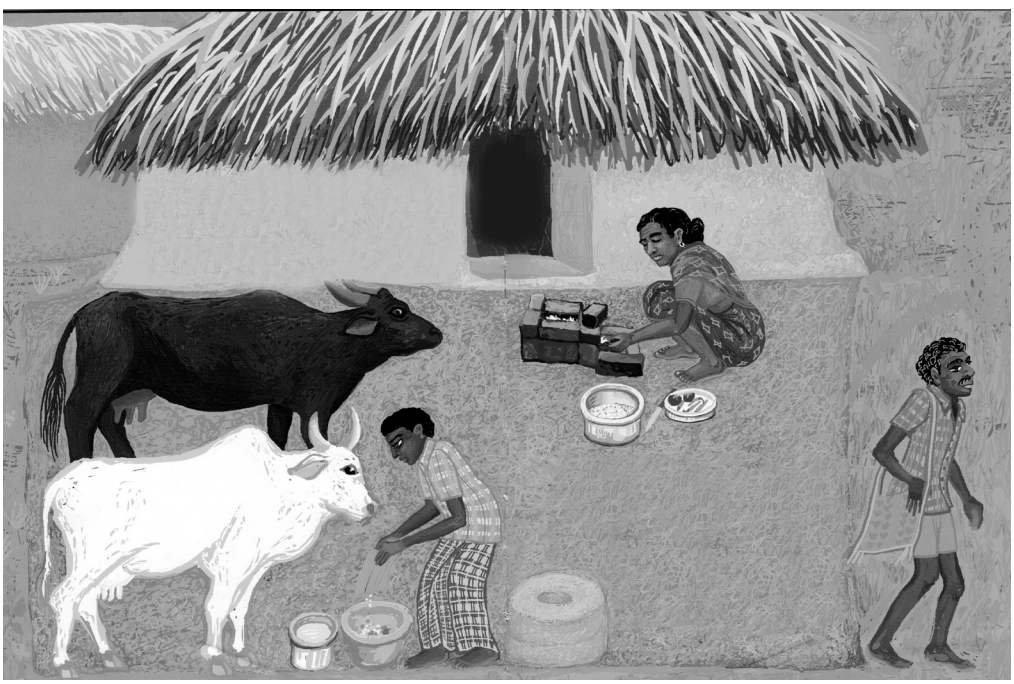

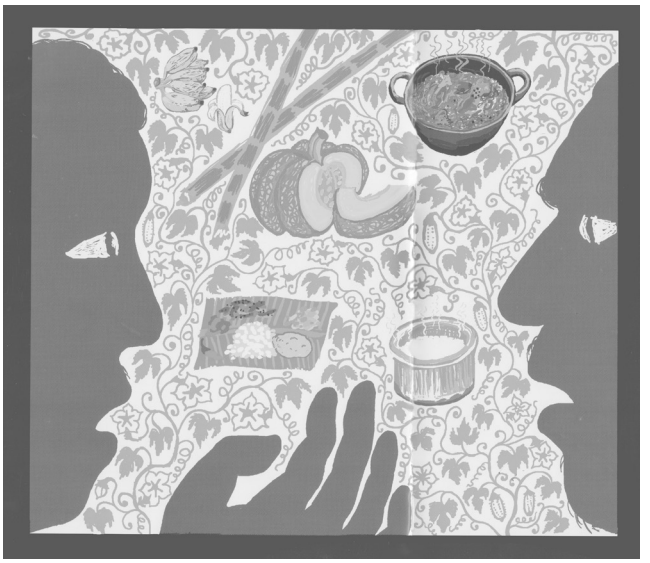

एक मौक़ा देती है बच्चों को उस परिस्थिति को बता पाने का, जहाँ उन्हें भेदभाव जैसा महसूस होता है। वे अपनी आहत भावनाओं को कक्षा में साझा कर पाते है, और ऐसे भेदभावों को लेकर अपने मन में उठने वाले प्रश्नों को रख पाते हैं, उनपर चर्चा कर पाते हैं।

वास्तविक जीवन में जिस तरह से काम को लेकर आमतौर पर उतार-चढ़ाव होते हैं और अलग-अलग कारणों से लोग काम बदल देते हैं, यह भी बच्चे समझ पाते हैं।

कहानी की भाषा सरल है। इसमें क्षेत्रीयता की झलक भी है, जैसे– कहानी के पात्रों के नाम और कुछ अन्य नाम तेलुगु संस्कृति की झलक देते हैं, कुछ नाम अलग से है, लेकिन पढ़कर समझ में आ ही जाता है कि वे किसी के नाम हैं। उदाहरण के लिए एलवरसु, एसक्किमुत्थु, राकम्मा और केले की घौद आदि। भाषा में भी बड़ी जाति, छोटी जाति का फ़र्क़ काफ़ी गहरा होता है और पूरी कहानी में यह कई जगह दिखाई पड़ता है। जैसे– मालिक के घर पहुँचते ही बाहर से ही कहना, पाँय लागू सरकार और जाते हुए विनम्रता से कहना कि सरकार हम जा रहे हैं। इसपर भी मालिक का रूखा-सा जवाब व व्यवहार।

बतौर पाठक मेरा अनुभव

मैं एक शिक्षिका हूँ। जब मैंने ख़ुद यह कहानी पढ़ी तब मेरी आँखों के सामने भी हमारे गाँव में होने वाले कुछ भेदभाव आ गए, जिनपर हमें कभी भी बातचीत करने का मौक़ा ही नहीं मिला।

हमारे गाँव में जब मेरी मम्मी और दादी पानी भरने जाती थीं तो पहले ठाकुर, सुनार आदि जाति के लोग पानी भरते थे, उसके बाद ही हम लोगों की बारी आती थी। हमें कई घण्टों तक वहाँ खड़े रहकर अपनी बारी का इन्तज़ार करना पड़ता था और वह लोग पूरा कुआँ बार-बार धोते थे। पहले तो समझ ही नहीं आता था कि ऐसा क्यों है? लेकिन जैसे-जैसे बड़े हुए तो कुछ समझ आने लगा और साथ-साथ ग़ुस्सा भी। मैं मम्मी से पूछती भी थी कि मम्मी, यह लोग ऐसा क्यों करते हैं। मम्मी यही बोलती थीं कि वह बड़ी जाति के हैं। यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती थी और मैं बिना पानी भरे ही घर आ जाती थी। बाद में दादी और मम्मी पानी भरकर लाती थीं।

आज भी हमारे मोहल्ले या गाँव में हर छोटी-छोटी सी बात में जातिगत भेदभाव दिखता है, लड़ाइयाँ होती हैं और लोग जाति सूचक गालियाँ देते हैं। लेकिन बड़े लोग और कई बार हम भी यही सोचते हैं कि ये सब चलता है, कौन-सा उनके बोलने से हमपर असर पड़ेगा? या, हमारा क्या बिगड़ जाएगा?

लेकिन कहानी कहती है कि शिक्षा जातिगत व्यवस्था पर सोचने और सवाल करने के लिए एक हथियार का काम कर सकती है। जिस तरह से एसक्किमुत्थु सूझ-बूझ के साथ अपने पिता से तर्क कर पा रहा था, वह शिक्षा के कारण ही सम्भव हुआ। वह कहता है, "केवल थोड़े-से पोंगल के चावल और दस रुपए के

गमछे के लिए क्या हम इतने गिर गए हैं कि उन्हें 70-80 रुपए के बराबर का एक मुर्ग़ा, एक बड़ा कद्दू, 10 रुपए का गन्ना, केले का इतना भरा हुआ घौद और चार किलो चावल लेकर दें। अरे, अगर हम ख़ुद ये सब पकाएँ और खाएँ तो क्या ये हम सबके लिए चार-पाँच दिन के लिए पूरा नहीं होगा?" उसे डर नहीं था कि आगे क्या होगा। उसे पिता के ग़ुस्से का भान था पर वह अपनी बातों से अपने माता-पिता और भाई को इस तरह की चली आ रही बेकार परम्परा को मानने से रोकना चाह रहा था। सही बात तो यही है कि जब घर में खाने को न हो, तब भी अपना पेट काटकर या भूखे रहकर मालिक को अपने हिस्से का सामान देना क्यों ठीक है? (मालिक के बहुत सम्पन्न होने के बावजूद) इतना सारा सामान देने पर भी एक गमछा और बदले में दुत्कार ही मिलता है। एसक्किमुत्थु भूतकाल और भविष्य की तुलना करके पिता को समझाना चाहता है। वह जानता है कि इन मसलों पर बातचीत होनी और ग़ुस्सा दिखाना भी ज़रूरी है। वह अपने पिता को वस्तुस्थिति से परिचित कराता है और अन्ततः, एसक्किमुत्थु अपने माता-पिता और भाई-बहन को भी उस परम्परा के बारे में सोचने के लिए मजबूर कर देता है। उसे उस भेदभाव की ज़िन्दगी से उबरने की एक छोटी किरण दिखती है।

इसी तरह पिता जानते हैं कि ऊँची जाति या मालिक के आगे झुकना और उनका कहना मानना ज़रूरी है और मजबूरी भी। पिता कहते हैं कि हममें इतनी ताक़त नहीं है कि हम उनके ख़िलाफ़ जाएँ या बग़ावत करें। इसलिए वो एसक्किमुत्थु को समझाना चाहते हैं कि वे मालिक को सामान देकर सही कर रहे हैं। वे कहते हैं, "इस लड़के को जीने का तरीक़ा पता नहीं है," क्योंकि वह उनकी कही बातों को नहीं मानता है। लेकिन साथ ही साथ वह यह भी जान रहे हैं कि जो हो रहा है, वह सही नहीं है।

सामाजिक मुद्दों पर बच्चों के साथ किसी-न-किसी माध्यम से बातचीत होते रहना बहुत ज़रूरी है। कहानी की किताबें इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और ये कहानियाँ कहानी किसी दूसरे की ज़िन्दगी के बहाने अपनी ज़िन्दगी और अपने समाज पर नज़र डालने का ज़रिया बनती हैं।

माया मौर्य ने पिछले 15 साल तक मुस्कान संस्था, भोपाल के साथ एक शिक्षिका के रूप में कार्य किया है। वे बस्ती सैंटर पर कामकाजी और स्कूल ड्रॉपआउट बच्चों को खेल-खेल में मनोरंजक तरीक़े से सीखने-सिखाने का कार्य करती रही हैं। उन्हें बच्चों के बीच रहने और उन्हें पढ़ाने में ख़ुशी मिलती है व बच्चों से बहुत कुछ सीखती हैं। उन्हें किताबें पढ़ने में रुचि है। माया मौर्य वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन भोपाल, मध्य प्रदेश में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : mayamourya@azimpremjifoundation.org